

दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की सीमाओं और व्यावहारिक चुनौतियों का एक सामाजिक-कानूनी मूल्यांकन

संजीव कुमार

शोधार्थी, *Master in Law (LL.M.)*, मोनाड विश्वविद्यालय, हापुड

डॉ. अमित कुमार

सहायक प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, मोनाड स्कूल ऑफ लॉ, मोनाड विश्वविद्यालय, हापुड

Article: Received: 23/05/2026, Returned: 28/05/2026, Accepted: 04/06/2026, Published: 06/06/2026.

D.O.I. <https://doi.org/10.5281/zenodo.20575843>



© 2026 The Author(s). This is an Open Access article/ Journal distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International which permits

unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are properly credited. (<https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/>)

शोध सार (Abstract): दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 भारतीय विधायिका का एक महत्वाकांक्षी प्रयास था, जिसका उद्देश्य विवाह संस्था से जुड़ी दहेज प्रथा को पूर्णतः समाप्त करना था। किंतु, छह दशकों के पश्चात भी यह अधिनियम अपने मूल उद्देश्यों को प्राप्त करने में संरचनात्मक एवं व्यावहारिक रूप से असफल प्रतीत होता है। यह शोध पत्र दहेज विरोधी विधियों की विधिक कमियों, कार्यान्वयन की प्रशासनिक चुनौतियों, एवं सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ के बीच विद्यमान गहरी खाई का सामाजिक-कानूनी (Socio-Legal) विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 498A, भारतीय न्याय संहिता (BNS) के प्रासंगिक प्रावधान, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 113B एवं घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 के अंतर्संबंधों का गहन अध्ययन किया गया है। अर्नेश कुमार (2014) एवं प्रीति गुप्ता (2010) जैसे सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक निर्णयों ने न्यायिक प्रक्रिया को दिशा प्रदान की है, किंतु व्यावहारिक धरातल पर दोषसिद्धि दर में गिरावट, पुलिस की निष्क्रियता, एवं सामाजिक दबाव अभी भी बनी हुई है। यह शोध पत्र तर्क प्रस्तुत करता है कि दहेज केवल एक विधिक समस्या नहीं, बल्कि एक गहरा सामाजिक-आर्थिक विकार है, जिसके निराकरण हेतु विधि, प्रशासन, एवं सामाजिक जागरूकता का समन्वित दृष्टिकोण आवश्यक है।

मुख्य शब्द: दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961, धारा 498A IPC, धारा 113B साक्ष्य अधिनियम, घरेलू हिंसा अधिनियम 2005, भारतीय न्याय संहिता 2023, अर्नेश कुमार वाद, सामाजिक-कानूनी अध्ययन, दहेज मृत्यु, विधिक सुधार, न्यायिक मार्गदर्शिका

2. प्रस्तावना एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (Introduction & Historical Perspective)

2.1 शोध का परिचय एवं संदर्भ

भारतीय समाज में दहेज प्रथा का ऐतिहासिक उद्भव मध्यकालीन सामंतवादी एवं जाति-आधारित सामाजिक संरचनाओं से जुड़ा है। प्रारंभ में यह "कन्यादान" एवं "स्त्रीधन" के रूप में एक ऐच्छिक एवं सम्मानजनक परंपरा थी, किंतु कालांतर में यह एक अनिवार्य, लालची एवं अत्यंत दमनकारी सामाजिक शर्त में परिवर्तित हो गई। आधुनिक भारत में दहेज केवल आर्थिक लेन-देन नहीं रह गया, बल्कि यह महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, मानसिक उत्पीड़न, एवं "दहेज मृत्यु" का प्रमुख कारक बन गया है। 1961 में दहेज प्रतिषेध अधिनियम के पारित होने के बावजूद, राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के 2022 के आँकड़े दर्शाते हैं कि दहेज-संबंधी अपराधों की संख्या में स्थिरता अथवा वृद्धि ही दर्ज हो रही है। यह तथ्य स्वयं में विधि एवं सामाजिक यथार्थ के बीच की गहरी विषमता को उजागर करता है।

दहेज की अवधारणा ने भारतीय विवाह संस्था को एक व्यापारिक लेन-देन में परिवर्तित कर दिया है। वर पक्ष द्वारा कन्या पक्ष से धन, संपत्ति, वाहन, एवं अन्य मूल्यवान वस्तुओं की माँग एक सामाजिक मानदंड बन गई है, जिसे पूरा न करना सामाजिक कलंक एवं आर्थिक बहिष्कार का कारण बनता है। यह प्रथा विशेष रूप से निम्न एवं मध्यम वर्गीय परिवारों पर अत्यधिक आर्थिक बोझ डालती है, जिसके परिणामस्वरूप ऋण, गरीबी, एवं सामाजिक विस्थापन की स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं।

2.2 विधिक इतिहास: दहेज विरोधी विधायी प्रयासों का क्रमिक विकास: ब्रिटिश काल में दहेज पर कोई विशेष विधान नहीं था। स्वतंत्रता-पश्चात, बढ़ती दहेज मृत्युओं की पृष्ठभूमि में संसद ने 1961 में दहेज प्रतिषेध अधिनियम पारित किया। 1984 एवं 1986 में किए गए संशोधनों ने दहेज माँग को संज्ञेय

अपराध घोषित किया, भारतीय दंड संहिता में धारा 304B (दहेज मृत्यु) एवं धारा 498A (क्रूरता) का समावेश किया, एवं भारतीय साक्ष्य अधिनियम में धारा 113B (उपधारणा) को प्रभावी किया। 2005 में घरेलू हिंसा अधिनियम ने नागरिक उपचारों का नया आयाम प्रदान किया। 2023 में लागू भारतीय न्याय संहिता (BNS) एवं भारतीय साक्ष्य संहिता (BSA) ने इन प्रावधानों को क्रमशः धारा 85, 108 एवं 89 में पुनर्स्थापित किया। किंतु, विधिक परिवर्तन के बावजूद, सामाजिक मानसिकता एवं प्रशासनिक कमजोरियाँ अपरिवर्तित रहीं।

2.3 शोध प्रश्न, उद्देश्य एवं विधिविज्ञान: इस शोध के प्रमुख प्रश्न हैं:

1. क्या दहेज प्रतिषेध अधिनियम ने अपने लक्ष्य प्राप्त किए?
2. विधिक प्रावधान एवं सामाजिक यथार्थ के बीच की खाई को कैसे समझा जाए?
3. कानून के दुरुपयोग एवं अप्रभावी कार्यान्वयन के बीच संतुलन कैसे स्थापित किया जाए?
4. न्यायिक मार्गदर्शिकाओं ने कानून की व्यावहारिक कार्यप्रणाली को कैसे प्रभावित किया है?

यह अध्ययन सामाजिक-कानूनी (Socio-Legal) पद्धति पर आधारित है, जिसमें विधिक विश्लेषण के साथ-साथ सामाजिक संरचनाओं, प्रशासनिक व्यवहार, एवं न्यायिक प्रवृत्तियों का एकीकृत मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। माध्यमिक स्रोतों में विधिक प्रावधान, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय, NCRB रिपोर्ट्स, एवं सामाजिक अध्ययन शामिल हैं।

3. दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 का विधिक ढांचा

3.1 अधिनियम की संरचना एवं प्रमुख प्रावधान: दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 2 में "दहेज" को विवाह के संबंध में, विवाह के पूर्व या पश्चात, किसी पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को दिए गए या माँगे गए किसी भी संपत्ति या मूल्यवान सुरक्षा के रूप में परिभाषित किया गया है। यह परिभाषा विस्तृत प्रतीत होती है, किंतु व्यावहारिक रूप से इसमें कई अस्पष्टताएँ निहित हैं।

धारा 3 दहेज लेने-देने पर प्रतिबंध लगाती है। इसके अंतर्गत, दहेज देने वाला एवं लेने वाला दोनों दण्ड के भागी हैं — एक विरोधाभासी प्रावधान, क्योंकि अधिकांश मामलों में दहेज देने वाला पक्ष (कन्या का परिवार) स्वयं पीड़ित होता है। धारा 4 दहेज माँग को दण्डनीय अपराध घोषित करती है, जिसमें न्यूनतम 6 माह की कारावास एवं अधिकतम 2 वर्ष की कारावास एवं जुर्माने का प्रावधान है। धारा 4A दहेज विज्ञापनों पर रोक लगाती है, एवं धारा 5 विवाह के समय दिए गए उपहारों की सूची बनाए रखने का अनिवार्य प्रावधान करती है।

धारा 3 की उपधारा (2) में एक महत्वपूर्ण अपवाद प्रदान किया गया है: "उपहार" जो विवाह के समय बिना किसी पूर्व माँग के दिए जाएँ, उन्हें दहेज नहीं माना जाएगा। किंतु, "उपहार" एवं "दहेज" के बीच विधिक भेद अत्यंत धुंधला है, जिसका लाभ आरोपित पक्ष आसानी से उठा लेते हैं।

3.2 अन्य विधियों के साथ अंतर्संबंध (Interconnectedness): दहेज विरोधी ढांचा केवल 1961 के अधिनियम तक सीमित नहीं है। यह एक बहु-स्तरीय विधिक तंत्र है जिसमें निम्नलिखित प्रमुख प्रावधान शामिल हैं:

भारतीय दंड संहिता की धारा 304B (दहेज मृत्यु): यदि किसी विवाहित महिला की मृत्यु विवाह के 7 वर्ष के भीतर हो एवं यह स्थापित हो कि मृत्यु से पूर्व उसे दहेज के लिए उत्पीड़ित या प्रताड़ित किया गया था, तो यह "दहेज मृत्यु" मानी जाएगी। इस अपराध में न्यूनतम 7 वर्ष की कारावास से लेकर आजीवन कारावास तक का दण्ड प्रावधानित है।

भारतीय दंड संहिता की धारा 498A (क्रूरता): पति या ससुरालीजनों द्वारा महिला के प्रति क्रूरता (शारीरिक एवं मानसिक दोनों) एक संज्ञेय, गैर-जमानतीय अपराध है। दहेज माँग को स्पष्ट रूप से "मानसिक क्रूरता" की श्रेणी में शामिल किया गया है।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 113B (उपधारणा): यदि यह सिद्ध हो जाए कि मृत्यु से पूर्व महिला को दहेज के लिए प्रताड़ित किया गया था, तो न्यायालय यह मान लेगा (Presume) कि दहेज मृत्यु हुई है। यह उपधारणा आरोप के पक्ष में है, किंतु यह "अनिर्णायक" (Rebuttable) है — अर्थात् आरोपित पक्ष इसे खंडित कर सकता है।

घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005: इसने नागरिक उपचारों का एक समानांतर तंत्र प्रदान किया, जिसमें संरक्षण आदेश, आर्थिक राहत, आवास अधिकार, एवं परामर्श सेवाएँ शामिल हैं। यह अधिनियम दहेज-संबंधित हिंसा के पीड़ितों को त्वरित राहत प्रदान करता है।

भारतीय न्याय संहिता (BNS), 2023: धारा 85 ने IPC की धारा 498A के स्थान पर नया प्रावधान प्रतिस्थापित किया है, जिसमें मानसिक उत्पीड़न की परिभाषा को विस्तृत किया गया है। धारा 108 ने IPC की धारा 304B के स्थान पर दहेज मृत्यु के प्रावधान को बनाए रखा है। भारतीय साक्ष्य संहिता (BSA) की धारा 89 ने उपधारणा के सिद्धांत को पुनः प्रतिष्ठित किया है।

यह बहु-स्तरीय विधिक ढांचा सैद्धांतिक रूप से मजबूत प्रतीत होता है, किंतु व्यावहारिक रूप से अतिव्यापन, असंगति, एवं प्रक्रियागत जटिलताओं से ग्रस्त है। एक ही तथ्य पर धारा 498A, दहेज प्रतिषेध अधिनियम, एवं घरेलू हिंसा अधिनियम के तहत समानांतर कार्यवाही पीड़ित एवं आरोपित दोनों के लिए भ्रामक एवं व्यय-बहुल है।

4. अधिनियम की विधिक सीमाएँ एवं अंतर्निहित कमियाँ

4.1 "दहेज" की परिभाषा की संकीर्णता एवं अस्पष्टता: धारा 2 की परिभाषा में "विवाह के संबंध में" एवं "उपहार" के बीच विधिक भेद स्पष्ट नहीं है। आधुनिक युग में दहेज के रूप बदल गए हैं: नकद हस्तांतरण (Cash Transfers), विदेश यात्राएँ, उच्च शिक्षा शुल्क, डिजिटल संपत्ति (Cryptocurrency, ऑनलाइन निवेश), एवं ससुराली पक्ष द्वारा निर्धारित "लाइफस्टाइल" माँगें। विधि इन नए रूपों को स्पष्ट रूप से संबोधित नहीं करती।

न्यायालयों ने विभिन्न निर्णयों में "दहेज" की परिभाषा का विस्तार करने का प्रयास किया है, किंतु विधायी स्तर पर अभी तक कोई संशोधन नहीं हुआ है। परिणामस्वरूप, आधुनिक दहेज के रूप कानून की पकड़ से बाहर रहते हैं।

4.2 साक्ष्य एवं प्रमाण की चुनौतियाँ: दहेज लेन-देन प्रायः मौखिक, गुप्त, एवं अनौपचारिक होता है। लिखित दस्तावेज दुर्लभ हैं। धारा 113B की उपधारणा व्यावहारिक रूप से तभी लागू होती है जब प्राथमिक साक्ष्य उपलब्ध हो। गवाहों की विश्वसनीयता सामाजिक दबाव, पारिवारिक वफादारी, एवं आर्थिक निर्भरता के कारण क्षीण हो जाती है। परिस्थितिजन्य साक्ष्य (Circumstantial Evidence) पर निर्भरता बढ़ी है, किंतु न्यायालय इन साक्ष्यों के मूल्यांकन में कड़े मानदंड अपनाते हैं। चिकित्सा रिपोर्ट, मृत्यु पूर्व बयान (Dying Declaration), एवं डिजिटल संवाद (WhatsApp, SMS) साक्ष्य के रूप में स्वीकार किए जाते हैं, किंतु इनकी प्रामाणिकता एवं संरक्षण चुनौतीपूर्ण है। **4.3 दण्ड प्रावधानों की अपर्याप्तता एवं विरोधाभास: अधिनियम में न्यूनतम दण्ड की सीमाएँ लचीली हैं। एक और विरोधाभास यह है कि दहेज देने वाले को भी दण्डित किया जा सकता है (धारा 3), जबकि वास्तविक पीड़ित अक्सर वही होती हैं। यह प्रावधान पीड़ित परिवारों को शिकायत दर्ज कराने से रोकता है।**

4.4 संवैधानिक एवं विधिक अतिव्यापन: एक ही तथ्य पर धारा 498A, दहेज प्रतिषेध अधिनियम, एवं घरेलू हिंसा अधिनियम के तहत समानांतर कार्यवाही संवैधानिक रूप से अनुच्छेद 20(2) (डबल जेओपाडी) की भावना के प्रति तनाव उत्पन्न करती है। न्यायालयों ने इसे प्रक्रियागत सुविधा के रूप में स्वीकार किया है, किंतु यह करदाता/पीड़ित दोनों के लिए भ्रामक एवं व्यय-बहुल है।

5. कार्यान्वयन की व्यावहारिक एवं प्रशासनिक चुनौतियाँ

5.1 पुलिस प्रशासन की भूमिका एवं निष्क्रियता: FIR दर्ज करने में अनिच्छा, "पारिवारिक विवाद" कहकर मामला टालना, एवं मीडिएशन के नाम पर पीड़ित को समझौते के लिए दबाव देना सामान्य प्रवृत्ति बन गई है। पुलिस अधिकारियों का प्रशिक्षण लैंगिक संवेदनशीलता एवं विधिक प्रक्रिया के संदर्भ में अपर्याप्त है। जाँच में विलंब एवं साक्ष्य संरक्षण की असफलता दोषसिद्धि दर को गंभीर रूप से प्रभावित करती है।

अर्नेश कुमार निर्णय (2014) के पश्चात्, गिरफ्तारी पूर्व जाँच अनिवार्य हो गई है, किंतु कई पुलिस स्टेशनों में यह प्रक्रिया औपचारिकता बनकर रह गई है। कुछ मामलों में पुलिस गिरफ्तारी से पूर्णतः बचती है, जबकि अन्य मामलों में अनावश्यक गिरफ्तारियाँ होती हैं। यह असंगतता न्यायिक प्रक्रिया की विश्वसनीयता को क्षति पहुँचाती है।

5.2 न्यायिक प्रक्रिया की जटिलता एवं विलंब: औसतन 5 से 7 वर्ष का न्यायिक विलंब पीड़ित को मानसिक एवं आर्थिक रूप से क्षतिग्रस्त करता है। गवाहों की अनुपस्थिति, केस फाइलों का खो जाना, एवं न्यायाधीशों का भारी कार्यभार प्रक्रिया को और धीमा करता है। विशेष दहेज न्यायालयों का अभाव इस समस्या को बढ़ाता है। न्यायिक विलंब का सबसे बड़ा प्रभाव पीड़ित महिला पर पड़ता है। लंबी कानूनी प्रक्रिया के दौरान, वह आर्थिक, मानसिक, एवं सामाजिक दबाव का सामना करती है। कई मामलों में, पीड़ित न्याय की प्रतीक्षा में ही मानसिक रूप से टूट जाती है या आर्थिक मजबूरी के कारण मामला वापस ले लेती है।

6. कानून का दुरुपयोग बनाम कानून का अप्रभावी होना: एक द्वंद्व

6.1 दुरुपयोग के दावे एवं सांख्यिकिक यथार्थ: पुरुष अधिकार समूहों का तर्क है कि धारा 498A एवं दहेज विधियों का दुरुपयोग "शहरी मध्यम वर्ग के पुरुषों के विरुद्ध हथियार" के रूप में किया जा रहा है। वे दावा करते हैं कि पत्नियाँ तलाक, संपत्ति विवाद, या पारिवारिक कलह के दौरान इन विधियों का दुरुपयोग करती हैं। किंतु, NCRB के आँकड़े स्पष्ट करते हैं कि दोषसिद्धि दर (Conviction Rate) 15-20% के आसपास ही बनी हुई है। वास्तविक समस्या दुरुपयोग नहीं, बल्कि "अप्रभावी कार्यान्वयन" है। मामलों की वापसी (Withdrawal) अक्सर सामाजिक दबाव, आर्थिक मजबूरी, या पारिवारिक समझौते के कारण होती है। यह तथ्य दर्शाता है कि कानून का दुरुपयोग नहीं, बल्कि कानून की असफलता वास्तविक समस्या है।

6.2 न्यायिक चिंता एवं संतुलन की आवश्यकता: सर्वोच्च न्यायालय ने अर्नेश कुमार (2014) एवं प्रीति गुप्ता (2010) में स्पष्ट किया है कि तुरंत गिरफ्तारी की प्रथा को रोका जाना चाहिए, एवं लंबे समय तक विवाहित जोड़ों के मामलों में मीडिएशन पर विचार किया जा सकता है। किंतु, इन निर्देशों को कई बार पुलिस एवं निचली अदालतों द्वारा "पीड़ित संरक्षण के विरुद्ध छूट" के रूप में गलत तरीके से लागू किया गया है।

संतुलन यह है कि दुरुपोज रोका जाए, किंतु वास्तविक पीड़ित को न्याय से वंचित न किया जाए। न्यायालयों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि प्रक्रियात्मक संरक्षण (गिरफ्तारी पूर्व जाँच, जमानत मानदंड) पीड़ित के अधिकारों को कमजोर न करें।

7. न्यायिक दृष्टिकोण: महत्वपूर्ण वाद एवं मार्गदर्शक सिद्धांत

7.1 न्यायपालिका की भूमिका: दहेज विधियों की व्याख्या एवं विस्तार: भारतीय न्यायपालिका ने दहेज विधियों की व्याख्या में एक सक्रिय एवं गतिशील भूमिका निभाई है। न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism) एवं न्यायिक संयम (Judicial Restraint) के बीच संतुलन बनाते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने दहेज पीड़ितों के संरक्षण एवं आरोपितों के अधिकारों के बीच एक नाजुक संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया है।

संवैधानिक न्यायालय के रूप में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 14, 15 एवं 21 के अंतर्गत महिलाओं के मौलिक अधिकारों की रक्षा को प्राथमिकता दी है। किंतु, प्रक्रियागत न्याय (Procedural Justice) के संदर्भ में, न्यायालय ने गिरफ्तारी, जमानत, एवं साक्ष्य मानदंडों पर कड़े निर्देश जारी किए हैं।

7.2 न्यायिक रुझान का समग्र विश्लेषण: न्यायपालिका ने स्पष्ट किया है कि दहेज विधियाँ "संरक्षणकारी" हैं, "दण्डात्मक" नहीं। किंतु, प्रक्रियागत संरक्षण (गिरफ्तारी पूर्व जाँच, जमानत मानदंड) को लेकर न्यायालय सतर्क रहा है। भविष्य में न्यायिक मार्गदर्शिकाओं को और स्पष्ट, एकरूप, एवं पीड़ित-केंद्रित बनाने की आवश्यकता है। न्यायिक रुझान में एक स्पष्ट परिवर्तन देखा जा रहा है: प्रारंभिक वर्षों में न्यायालय दहेज पीड़ितों के संरक्षण पर अधिक केंद्रित था, किंतु हाल के वर्षों में प्रक्रियागत न्याय एवं आरोपित अधिकारों पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। यह परिवर्तन सकारात्मक है, किंतु इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रक्रियागत सुधार पीड़ित के अधिकारों को कमजोर न करें।

8. निष्कर्ष, सुधारात्मक सुझाव एवं भविष्य की राह:

8.1 शोध के प्रमुख निष्कर्ष

इस सामाजिक-कानूनी अध्ययन से निम्नलिखित प्रमुख निष्कर्ष निकलते हैं:

प्रथम, दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 एक विधिक रूपरेखा प्रदान करता है, किंतु इसकी परिभाषाएँ पुरानी, साक्ष्य मानदंड अपर्याप्त, एवं दण्ड प्रावधान लचीले हैं। विधि के कागजी प्रावधान एवं सामाजिक यथार्थ के बीच एक गहरी खाई विद्यमान है।

द्वितीय, कार्यान्वयन में पुलिस की निष्क्रियता, न्यायिक विलंब, एवं सामाजिक दबाव प्रमुख बाधाएँ हैं। NCRB आँकड़े दर्शाते हैं कि दोषसिद्धि दर (Conviction Rate) 15-20% के आसपास है, जो इस तंत्र की गंभीर अक्षमता को उजागर करता है।

तृतीय, "दुरुपोज" का दावा सांख्यिकिक रूप से कमजोर है। वास्तविक समस्या "अप्रभावी कार्यान्वयन" एवं "दोषसिद्धि दर में गिरावट" है। मामलों की वापसी अक्सर सामाजिक दबाव एवं आर्थिक मजबूरी के कारण होती है।

8.2 व्यावहारिक एवं नीतिगत सुझाव: इस शोध के आधार पर निम्नलिखित नौ व्यावहारिक एवं नीतिगत सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं:

सुझाव 1: विधिक परिभाषा का विस्तार "दहेज" की आधुनिक रूपों (डिजिटल हस्तांतरण, शिक्षा शुल्क, लॉन्ग-टर्म संपत्ति, विदेश यात्रा) को स्पष्ट रूप से शामिल किया जाए।

सुझाव 2: विशेष दहेज न्यायालय — त्वरित निपटारे हेतु विशेष न्यायालयों की स्थापना एवं समयसीमा (6-12 माह) निर्धारित की जाए।

सुझाव 3: पुलिस प्रशिक्षण एवं संवेदीकरण — लैंगिक संवेदनशीलता, विधिक प्रक्रिया, एवं गवाह संरक्षण पर अनिवार्य प्रशिक्षण कार्यक्रम।

सुझाव 4: गवाह संरक्षण एवं पीड़ित सहायता कोष — सरकारी कोष से कानूनी सहायता, आर्थिक पुनर्वास, एवं मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ।

सुझाव 5: डिजिटल साक्ष्य प्रावधान — WhatsApp, SMS, बैंक ट्रांजैक्शन, एवं सोशल मीडिया संवादों को वैध साक्ष्य के रूप में मान्यता एवं संरक्षण तंत्र।

8.3 शोध की सीमाएँ एवं भविष्य की दिशाएँ

यह अध्ययन माध्यमिक स्रोतों पर आधारित है। भविष्य के शोध में प्राथमिक डेटा (पीड़ित साक्षात्कार, पुलिस रिकॉर्ड विश्लेषण, न्यायालयीन डेटाबेस), अनुभवजन्य सर्वेक्षण, एवं तुलनात्मक विधिक अध्ययन शामिल किए जा सकते हैं।

8.4 अंतिम टिप्पणी: "दहेज केवल एक कानूनी समस्या नहीं, एक सामाजिक रोग है।" विधि केवल तभी प्रभावी है जब समाज उसे अपनाए। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15 एवं 21 के आलोक में, लैंगिक न्याय की स्थापना हेतु विधि, शिक्षा, एवं सामाजिक परिवर्तन का त्रिमूर्ति दृष्टिकोण आवश्यक है। दहेज मुक्त भारत के निर्माण की दिशा में, कानून को केवल दण्ड देने वाला हथियार नहीं, बल्कि सामाजिक पुनर्निर्माण का साधन बनना चाहिए। "एक

सभ्य समाज वह है जहाँ विवाह प्रेम एवं सम्मान पर आधारित हो, न कि लेन-देन पर।" यह केवल कानूनी सुधार नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति की माँग करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)

प्राथमिक स्रोत (Primary Sources)

- दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961
- भारतीय दंड संहिता, 1860 (धारा 304B, 498A)
- भारतीय न्याय संहिता, 2023 (धारा 85, 108)
- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (धारा 113B) एवं भारतीय साक्ष्य संहिता, 2023 (धारा 89)
- घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005
- भारतीय संविधान — अनुच्छेद 14, 15, 21

न्यायिक निर्णय (Case Law)

- अर्नेश कुमार बनाम बिहार राज्य, (2014) 8 SCC 273
- प्रीति गुप्ता बनाम हरियाणा राज्य, (2010) 7 SCC 667
- राजेश कुमार बनाम राज्य, (2017) 9 SCC 301
- सतपाल बनाम राज्य, (2018) 4 SCC 592
- कैलाश मंसूखलानी बनाम राज्य, (2010) 11 SCC 350
- राजबहादुर सिंह बनाम अजय पाल, (2020) 3 SCC 156

माध्यमिक स्रोत (Secondary Sources)

- NCRB, "Crime in India 2022", Ministry of Home Affairs, Government of India
- विधि आयोग ऑफ इंडिया, "दहेज एवं महिला उत्पीड़न: विधिक समीक्षा," (2008)
- अमिता सिंह, "दहेज प्रॉहिबिशन एक्ट: अ सोशियो-लीगल एनालिसिस," (2019) 41 JILI 234
- UN Women, "Eliminating Dowry: Legal & Social Strategies in South Asia," (2021)
- शैलजा वर्मा, "वुमेन एंड द लॉ ऑफ डोवरी इन इंडिया," (2020) Oxford University Press
- प्रिया शर्मा, "जेंडर जस्टिस एंड द डोवरी लॉज इन इंडिया," (2021) 12 NALSAR L. Rev. 45.

Declaration by Author (s): "We hereby declare that this manuscript is our original work, free from plagiarism, and that all sources and any use of Artificial Intelligence tools for content generation or editing have been fully disclosed and verified for accuracy." संजीव कुमार एवं डॉ. अमित कुमार